द्वितीय अध्याय

साठोत्तरी हिन्दी कहानी में संवेदना का परिप्रेक्ष्य और ज्ञानरंजन की कहानियाँ

किस्सा कहने की प्रवृत्ति मनुष्य की बड़ी ही पुरानी है। यह आनंद और शिक्षण का सभ्यताओं में एक माध्यम भी रही है। ये किस्से भी संस्कृति और सभ्यताओं के लोक-पक्ष का जीवंत प्रमाण हैं और किसी भी जातीयता के वाङ्मय में अपना एक विशेष महत्त्व रखते हैं। इन किस्सों ने व्यक्ति का चारित्रिक संस्कार भी किया है। ये शिक्षण का बहुत ही सशक्त माध्यम रहे हैं तथा मनीषा के उद्भावक भी। किंचित इसी कारण भोजपुरी बोली में कहावत ही है–"किस्सा गइल बन में, सोच अपना मन में।" हिंदी कहानी की विकास-परंपरा को स्पष्ट करने के क्रम में इन किस्सों की भूमिका को नकारना नहीं चाहिए। वस्तुतः संस्कृत के वेदों एवं उपनिषदों की रूपक कथाएँ, हितोपदेश एवं पंचतंत्र की कथाएँ इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं का कथा साहित्य कहीं-न-कहीं इस अतीत से प्रभावित दिखता है। विजयदान देथा का कथा साहित्य तो इसका जीता-जागता प्रमाण है। इन किस्सों का रूपकों में प्रयोग आज भी यत्र-तत्र दिख ही जाता है। अलिफ़-लैला जैसी अरबी और फ़ारसी की दास्तानें या अफसाने विश्वभर को प्रभावित करते रहे हैं। इस प्रकार ये किस्से विश्व संस्कृति को समृद्ध करने के साथ-साथ विश्व की विविध सभ्यताओं के संपर्क-संयोजन में भी अपना महत्त्व रखते हैं। यहाँ स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य का भूगोल थोड़ा विचित्र होता है। "लेना-देना, आदान-प्रदान करना उसका स्वभाव होता है, प्रश्न यही है कि कितने परिष्कृत और अच्छे ढंग से कौन यह विश्वबोध अपने में समाहित करता है एवं उसके अस्तित्व से अलग नहीं दिखाई देता तथा उससे बंधकर भी नहीं बंधता।"

आलोचकों की दृष्टि में आधुनिक संदर्भों में हिंदी कहानी का प्रारंभ आधुनिक काल से हुआ है। यहाँ आधुनिक संदर्भों में छः तत्त्वों वाली कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। एडगर एलेन पो ने छः तत्त्वों वाली कहानी की अवधारणा एवं उदाहरण प्रस्तुत किया। ये छः तत्त्व थे कथानक, पात्र-योजना, देशकाल और वातावरण, कथोपकथन, भाषा-शैली और उद्देश्य। पो के अनुसार–

"कहानी कथा का एक टुकड़ा है, जिसमें कोई भौतिक या आध्यात्मिक घटना होती है । वह एक बैठक में पढ़ी जाती है । यह मौलिक होती है ।"[2] इन कहानियों में एक सुगढ़ प्लाट की नियोजना होती है और जीवन उस प्लाट के आरंभ, उत्कर्ष और अंत में समाया होता है । मोपासां ने इन कहानियों को मनोवैज्ञानिक संदर्भ प्रदान किया था ।

रूसी लेखक चेख़ब ने सर्वप्रथम इस पारंपरिक कथा-विन्यास एवं विवृत्ति को तोड़ने का प्रयास किया । उसने संरचना को नया आयाम दिया । चेख़ब ने जीवन के किसी एक टुकड़े को उठाकर उसे परिवेश की जीवंतता में अनुभूत सत्य के रूप मे प्रकाशित किया है । चेख़ब अपनी कहानियों में वस्तु-पक्ष के निर्माण में निस्संग दिखते हैं परंतु उसके शिल्प-पक्ष के प्रति वे बहुत ही सजग हैं, किंचित इसी कारण वे यथार्थ को सही तरीके से रूपायित कर सके, उन्होंने कला में समाधान देने की आवश्यकता न समझी, वे वस्तु स्थिति के रूपायन पर बल देते हैं । इस प्रकार से पश्चिम में कथा-सूत्र के क्षेत्र में दो महत्त्वपूर्ण संदर्भ रहे हैं ।

हिंदी कहानी ने अपने पिछले युगों की परंपरा में बंधकर समग्र और सामूहिक रूप से जो विरासत पाई है, उसे उसने नवीन रूपों में संवारा और निखारा है । नए-नए आयामों, बदलते परिवेश और स्थितियों में कहानी की परंपरा चली आती स्थिति में परिवर्तन की पक्षधर लगती है, इसी कारण वह समय-समय पर कालक्रम के अनुरूप नवीन रूप धारण करती रही है ।

हिंदी कहानी की परंपरा की जड़ें कहीं-न-कहीं हितोपदेश, पंचतंत्र से लेकर जातक कथाओं की परंपरा से जुड़ी हैं, परंतु आधुनिक संदर्भों में पश्चिम से आती

हुई हवाओं ने भी उसके रूप-स्वरूप को प्रभावित किया। अंग्रेजी समेत यूरोप की कई भाषाओं में जब तीव्र यूरोपीय औद्योगीकरण एवं औपनिवेशिक विस्तार के कारण पश्चिम में कविता को पीछे छोड़कर, कहानी साहित्य की केन्द्रीय विधा बनने लगी तो भारतीय उपमहाद्वीपों में भी कहीं-न-कहीं औपनिवेशिक वर्चस्ववादी संस्कृति के कारण हिंदी समेत अन्यान्य भारतीय भाषाओं में भी कहानी का तीव्र प्रवर्त्तन देखने को मिलता है।

12.1 साठोत्तरी हिंदी कहानी : तात्पर्य एवं परिचय :

हिंदी कहानी के विविध आंदोलनों में साठोत्तरी कहानी का अपना एक अलग ही महत्त्व है। साठोत्तरी कहानी मूल रूप से नयी कहानी के ही विकास का एक चरण है, हालांकि इसे नई कहानी से अलग बताया जाता है और यह कहा जाता है कि यह नयी कहानी आंदोलन की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई थी। इस संदर्भ में यह अवश्य कहा जा सकता है कि संवेदना और शिल्प के स्तर पर साठोत्तरी कहानी में बहुत कुछ नवीनता है।

सन् 1950 के बाद हिंदी साहित्य में नई कहानी आंदोलन को एक महत्त्वपूर्ण चरण माना जाता है। हिंदी साहित्येतिहास में इसका स्थान बड़ा ही अहं है। साठोत्तरी कहानी की पृष्ठभूमि भी इसी ने तैयार की थी। शाब्दिक संदर्भ में साठोत्तरी कहानी से तात्पर्य है सन् साठ के बाद की कहानी अर्थात् सन् 1960 के बाद का हिंदी का कहानी साहित्य ही साठोत्तरी कहानी के नाम से जाना जाता है। इस युग में हिंदी की कहानी विधा के क्षेत्र में नई कहानी की कई प्रवृत्तियों को लेकर साठोत्तरी कहानी ने अपनी कई धाराएँ निर्मित कीं, जिनमें अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सहज कहानी इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। इस संदर्भ में डॉ. रामदरश मिश्र का कहना है–"साठोत्तरी कहानी नयी कहानी

की बुनियादी बातों को लेकर ही भिन्न-भिन्न तरह से अपना विशिष्ट स्वरूप निर्मित करने की चेष्टा करती है। इसीलिए मैंने नयी कहानी का विश्लेषण करते हुए सामान्य रूप में उसकी व्याप्ति आज तक मान ली है।"[3] इस क्रम में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि डॉ. रामदरश मिश्र ने उपर्युक्त तथ्य का उद्घाटन सन् 1977 में किया था। यहां एक और तथ्य भी उल्लेखनीय है कि हमें साठोत्तरी शब्द का तात्पर्य ग्रहण करते हुए सन् साठ के बाद से आज तक की सारी कहानियों को साठोत्तरी कहानी नहीं मान लेना चाहिए।

2.2 संवेदना का बदलता हुआ स्वरूप : हिंदी कहानी के संदर्भ में :

हिंदी कहानी के प्रारंभिक चरण में ही गुलेरी, प्रेमचंद और प्रसाद जैसे प्रौढ़ लेखकों के आगमन ने हिंदी कहानी को साहित्य के नक्षत्र-पटल पर एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', से 'पूस की रात', 'कफ़न' तक की बहुआयामी तीन सौ से ज़्यादा कहानियों की यात्रा ने हिंदी कहानी के क्षितिज का विराट् विस्तार कर डाला तथा प्रसाद की 'पुरस्कार' और 'आकाशदीप' से लेकर 'मधुआ' तक की यात्रा ने उसे सजाया-संवारा। इनके पूर्व चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' ने हिंदी कहानी विधा के स्वर्णिम भविष्य का संकेत कर दिया था।

प्रेमचंद और प्रसाद के बाद उनकी कथा परंपराओं का अनुसरण एक तरफ़ यशपाल, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय और अमरकांत जैसे लोग करते नज़र आते हैं, तो दूसरी तरफ़ प्रसाद की कथा-विरासत को जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचंद जोशी इत्यादि ढोते नज़र आते हैं। दरअसल यह सामाजिकता बनाम व्यक्ति केन्द्रित चरित्रों की द्वंद्वात्मक अवस्थिति थी, जिसका विकास अलग-अलग

समानांतर कथा परंपराओं में प्रेमचंदीय परंपरा और प्रसादीय परंपरा के रूप में होता है। यही कारण है कि युग-बोध को समेटने के क्रम में हिंदी कहानी विधा के विकास-क्रम में कई-कई कहानी आंदोलन आते और जाते दृष्टिगत होते हैं, जैसे-प्रगतिवादी कहानी आंदोलन, नई कहानी आंदोलन, अकहानी आंदोलन, समांतर कहानी आंदोलन या सांप्रतिक जनवादी कहानी आंदोलन।

नवीन साहित्य विधाओं के उद्‌गम एवं विकास की ओर संकेत करते हुए डॉ. श्याम सुंदर घोष ने उचित ही लिखा है–"किसी भी देश के साहित्य में नवीन साहित्य विधाओं का जन्म तब होता है जबकि उस देश का साहित्य नवीन भाव संवेदनों से आंदोलित होने लगता है। जब वह नवीन भाव संवेदनों से आन्दोलित होने लगता है, तब ये नवीन भाव संवेदन प्रचलित साहित्य रूपों से प्रभावशाली ढंग से व्यक्त नहीं हो पाते हैं तब इनको ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए साहित्यकार नवीन साहित्य रूपों की तलाश करता है।"[4]

निश्चित तौर पर साहित्य में नए रूप जातीय जीवन की नवीन आकांक्षाओं के परिचायक होते हैं और यह नयापन पुराने युग में भी होता है और वर्त्तमान युग में भी। यही कारण है कि हिंदी कहानी के रूप-स्वरूप में भी युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। हिंदी कहानी का जो रूप स्वतंत्रता-पूर्व का है, वह स्वातंत्र्योत्तर नहीं है। नए साहित्य के रूप भावात्मक रद्दोबदल के गहरे दबाव के कारण दबे हुए स्रोत की तरह अपना मार्ग ढूंढकर बाहर फूट पड़ते हैं। आज़ादी के साथ या आज़ादी के बाद लेखकों की आई एक बड़ी तादाद ने जब यह महसूस करना शुरू किया कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनीतिक आज़ादी के बाद और कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हुआ है, सिर्फ़ 'जॉन की ज़गह गोविंद' गद्दी पर बैठ गया है और ढांचा तथाकथित संसदीय बना दिया गया है, तब

हिंदी कहानी के क्षेत्र में भी स्वाधीनता के बाद फैली हुई बेरोजगारी, विषमता, निर्धनता, राजनीतिक, आर्थिक, भ्रष्टाचार को पूरी यथार्थता के साथ स्वयं में 'घीसू'-'माधव' जैसे चरित्रों की परंपरा में इन लेखकों ने 'हंसा', 'गुलरा का बाबा', 'दादी माँ' 'बोधन तिवारी', 'गदल' जैसे चरित्रों के माध्यम से व्यक्त किया। इसी संदर्भ में उदयभानु मिश्र का कहना है कि–"जहां शिव प्रसाद सिंह ने अपनी दृष्टि को नटों, मुसहरों, हिंजड़ों और कंजड़ों की तरफ़ लगा दिया, खोखली आधुनिकता और धीमे औद्योगीकरण की ज्वाला में जलते हुए जनमानस पर नज़र फेरी, वहीं मार्कण्डेय ने आधुनिक भारत के भूमि सुधार और विकास को स्थिर और व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। कमलेश्वर ने कस्बों और गांवों की कराह को यथार्थ के धरातल पर सुनने की चेष्टा की।"[5]

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के दौर में जब नई कहानी आंदोलन की शुरूआत होती है, तब कहानी अपने समय से साक्षात् करने के क्रम में आदर्श एवं त्याग तथा अन्य भावनाओं की झूठी उड़ान नहीं भरती एवं भावुकतापूर्ण पिछली बचकाना तृप्ति का ढंग छोड़कर अपने बदले हुए समय से संवाद स्थापित करती दिखती है। रमेश बक्षी ने इसी संदर्भ में कहा है–"हमारी हिंदी की कहानी के साथ शास्त्रीय तत्त्वों की जो सीमाएँ थीं, अपनी भावुकतापूर्ण पिछली रहस्यपूर्ण पसंद की तृप्ति के लिए जो तरीके थे, वे अब चुक गए हैं और नई कहानी के रूप में उसका बदला हुआ, जो रूप सामने आया है, वह समयानुकूल ही नहीं हिंदी के कथा साहित्य को श्रेष्ठतम बनाने के लिए भी अनिवार्य है।"[6]

प्रत्येक नई परिस्थिति में सामाजिक संदर्भ एवं प्रसंग बदले हुए होते हैं और यह स्थिति नए जीवन मूल्यों की चेतना की तरफ़ बढ़ती जाती है। इन्हीं कारणों से बदलती स्थितियों में रचना के संस्कार, भाव एवं कारण भी बदलते

दिखते हैं। कभी-कभी यह परिवर्तन इतना तेज़ और झटकेदार होता है कि वह विकास या परंपरा से हटकर अलग दिखाई देने लगता है। यही वजह है कि नई कहानी भी एक संपूर्ण अनुभव से गुज़रती है। इसमें कोई भी शक या निष्कर्ष आरोपित नहीं होता है। इसके अनुभव और चेतना तक स्वयं पाठक पहुँचता है। उसका युग-बोध एक व्यक्ति के अनुभव एवं संदर्शन तक ही सीमित नहीं रहता, वह पूरे परिवेश और सामाजिक संदर्भ और समकालीनता से संबद्ध होता है। आज़ादी के बाद सामने आ रहे नए कथाकारों ने इस बदलती हुई संवेदना और स्थितियों की गत्यात्मकता को उनके पूरे स्वरूप में पकड़ने का प्रयास किया। 'जॉन की ज़गह गोविंद का आना', पंचवर्षीय योजनाओं के साथ तीव्र औद्योगीकरण, क़स्बों का नगरों में और नगरों का महानगरों में होता हुआ तेज़ी से परिवर्तन, देश के दस-बीस बड़े घरानों का आसमान छूना और उनके बड़े दलालों के रूप में थैलीशाहों, भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, बड़े इंजिनियरों, ठेकेदारों एवं माफिया-तंत्रों द्वारा प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग, नेहरू के तथाकथित समाजवादी यूटोपिया की खुलती हुई पोल ने, लेखकों के एक हिस्से को भीतर से हिला दिया। यही वजह है कि कथानक के विषयों में परिवर्तन होता चलता है। इंद्रनाथ मदान ने इस संदर्भ में लिखा है कि–"यह नवीनता शिल्पगत न होकर वस्तुगत भी है। इसके मूल में कहानीकार की वह जीवन-दृष्टि है जो खण्ड-सत्य को उसके व्यापक परिवेश में आंकती है।"[7]

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की जड़ें आस-पास के यथार्थ की भूमि में हैं, इसलिए इसका एक अपना नया कथानक है, जो ठेठ समाज और जीवन से जुड़ा है। कथानक व्यक्ति और उसके परिवेश को सही संदर्भ में संतुलित करके उभारता है। लेखक 'नरेशन' में ही सब कुछ कह बैठता है, इसीलिए वह अनुभूतियों के मनोविश्लेषण और अंतर्द्वंद्वों के माध्यम से अपनी बात कह जाता

है। डॉ. नामवर सिंह कहानी की रूप प्रवृत्ति और कथानक की नवीनता के बारे में कहते हैं-"कहानीकार तो कहानी की रचना करता है, उसे संक्षिप्त और सरल करके कथा-सूत्र निकालने का काम पाठक करता है।"[8]

निश्चित तौर पर हिंदी कहानी ने ख़ासकर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी ने अन्य विधाओं की अपेक्षा अपने लघु रूप में जीवन के छोटे-छोटे अंशों के चित्रण के माध्यम से जीवन को समग्रता में चित्रित करने का प्रयास किया। इस समस्त तीव्र संक्रमण के युग में राम प्रकाश दीक्षित के शब्दों में कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में– "इस काल का सारा मानव जीवन, मूल्यों का विघटन तथा पुनर्मूल्यन तथा आर्थिक संघर्ष, संस्कारों का संघर्ष, विचारों का संघर्ष, जीवन की विकृतियाँ, नए उभरते मानवीय संबंध, नई घटनाएँ आदि अपनी संपूर्ण समग्रता तथा सच्चाई के साथ मूर्तिमान हो उठे हैं।"[9] नए कथाकारों में मार्कण्डेय, शेखर जोशी, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह आदि महत्त्वपूर्ण माने गए। इनमें से अधिकांश कथाकारों की कथा-भूमि गांव, क़स्बे एवं शहरों में विभाजित थी। मार्कण्डेय ('हंसा जाई अकेला') जैसे लोग बदलती ग्राम-संवेदना और उसके अंतर्विरोधों को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे, तो राकेश ('मलवे का मालिक') के माध्यम से विभाजन की त्रासदी एवं 'मिस पाल', 'आर्द्रा' जैसी कहानियों से आधुनिकता की विसंगतियों एवं मध्यवर्गीय विडंबनाओं को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे। कमलेश्वर शिक्षित मध्यवर्गीय संबंधों में आयी खरोंचों को देखने का प्रयास कर रहे थे। मूल्यों के विघटन एवं सांप्रतिक जीवन की विकृतियों का वर्णन इनके कथा विन्यास में बार-बार आ रहे थे, पर इनमें से अधिकांश लेखक गांव या क़स्बों से उजड़कर शहरों में आ गए थे। इनमें से अधिकांश कथाकारों के मूल में आज़ादी के बाद के भारतीय समाज में आया

मध्यवर्ग एवं उसकी विसंगतियाँ थीं । सभी अपने-अपने ढंग से इस वर्ग की विडंबनाओं, विसंगतियों एवं अंतर्विरोधों को चित्रित करने का प्रयास कर रहे थे । ये मध्यवर्ग के उस जीवन और जगत को कहानियों में प्रतिफलित कर रहे थे, जिसमें हम सांस लेते, जीते और मरते हैं । कभी धीमे से, कभी तेज़ी से होता हुआ शहरीकरण शहरी मध्यवर्ग के जीवन में आ रही उदासीनता, तनाव, संदेह, विकर्षण, अलगाव, अजनबीपन आदि को ये कहानीकार बदली हुई जीवन स्थितियों और जटिलताओं के संदर्भ में अपने-अपने ढंग से चित्रित कर रहे थे, पर इन कहानीकारों के बीच ज्ञानरंजन एक ऐसे कथाकार हैं, जो इलाहाबाद जैसे शहर में ही पले, वहां की धूल-माटी और आबोहवा में सांस लेते खेलते कूदते बड़े हुए, उन्होंने औद्योगीकरण के बाद शहरों में बसे इस मध्यवर्ग को उसकी संपूर्ण गति-मति के साथ जिस तरह पकड़ने का प्रयत्न किया, वह निश्चित रूप से उनके साथी समकालीन कहानीकारों के यहां विरल है । इन कहानीकारों ने 'अनहीरोइक' कहानियाँ लिखकर अपनी युगीन चेतना को प्रतिबिंबित करने का प्रयास किया । ये कहानीकार सम्मान के विपक्ष में खड़े थे । इनका मुख्य स्वर निषेध एवं विद्रोह का था । यहां ज्ञानरंजन के संदभ में एक प्रश्न उठता है कि उन्हें किस कहानी आंदोलन के अंतर्गत रखा जाए । 21.07.2005 को ज़बलपुर में 'ज्ञान-वीथिका' ('पहल'का कर्यालय) में शोधकर्त्ता द्वारा लिए गए उनके साक्षात्कार में उनसे उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर मांगने पर उन्होंने मात्र मुस्कराकर टाल देना चाहा था । परंतु बार-बार पूछने पर केवल इतना ही लेखक ने कहा था–"अकहानी के अंतर्गत मुझे रखना एक दुर्घटना होगी ।" अब अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी आदि के मूलभूत तत्त्वों को सामने रखकर ज्ञानरंजन की कहानियों पर आलोकपात करना समुचित प्रतीत होता है :

साठोत्तरी हिंदी कहानी की कई शाखाएँ हैं । इनमें अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहानी और समसामयिक कहानी का

नाम लिया जाता है । डॉ. रामदरश मिश्र ने साठोत्तर कहानी की शाखाओं के बारे में लिखा है– "इस बीच तीन तरह की कहानियाँ आयीं । इन्हें (1) अकहानी (2) सचेतन कहानी और (3) आम आदमी की कहानी कहा गया । यों सहज कहानी और आठवें दशक में समांतर कहानी का भी आंदोलन छिड़ा है ।"[10]

2.21 अकहानी :

अकहानी साठोत्तरी कहानी की ही एक धारा है । इस धारा की कहानियों का मूल स्वर विद्रोह एवं निषेध का रहा है । कुछ कहानियों में तो सब कुछ का ही निषेध मिलता है एवं कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें निषेधात्मकता नहीं है परंतु उनमें विद्रोहपरकता अवश्य है । निषेध उस विद्रोह का एक पहलू हो सकता है । विद्रोह दृष्टि से संवलित ये कहानियाँ सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों की पहचान करती हैं । ये कहानियाँ समाज में पनप रही अमानवीयता के संदर्भ में समाज की पड़ताल करती हैं, जिसके मूल में संवेदनाओं का समाज में क्षरण है । इन कहानियों में निषेध करने के लिए निषेध पर बल नहीं है, बल्कि निषेध वहां विद्रोह का एक अंग है । यह निषेध का एक सर्जनात्मक रूप है । इन कहानियों का स्वर अस्वीकार का है । विद्रोही चेतना के मूल में अर्थगत वैषम्य एक बहुत बड़ा मुद्दा है, जो इन कहानियों में नज़र आता है । इनमें आम आदमी के जीवन में अर्थाभाव के प्रति रोष देखा जा सकता है । दिसंबर 1962 में 'सारिका' का नवलेखन अंक निकला, जिसमें राजकमल चौधरी, विजयमोहन सिंह, दूधनाथ सिंह जैसे लोगों की कहानियाँ थीं । इसी समय हिंदी कहानी में बदलाव की गंध पाठकों को महसूस होती है । कई विद्वानों ने कहा है कि अकहानी की प्रेरणा विदेशी है और इस पर गिंसबर्ग जैसे लोगों का प्रभाव है । कई विद्वानों के अनुसार पश्चिम में चले 'एंटी स्टोरी मूवमेंट' की अनुकृति या उसका हिंदी संस्करण है अकहानी । कथाकार-समीक्षक बटरोही के अनुसार– "आधुनिक युग

में जो आंदोलन चले उनमें सर्वाधिक विवादास्पद अकहानी (एंटी स्टोरी) का आंदोलन था। किंतु उसमें भी कहानी के मूलस्वरूप को छिपा दिया गया हो, ऐसा नहीं है। कहानी के मूल्यांकन मान संबंधी धारणाओं में परिवर्तन हुआ। लेकिन वह कहानी ही बनी रही। कहानी के अतिरिक्त कोई अन्य विधा नहीं हो गयी।"[11] इसी कहानी- आंदोलन की स्थापना के लिए 'अकहानी' शीर्षक से श्याममोहन श्रीवास्तव तथा सुरेंद्र अरोड़ा के संपादन में एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की भूमिका में अकहानी की व्याख्या की गई तथा इसमें डॉ. गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल जैसे कहानीकारों की कहानियाँ भी छपीं।

'अकहानी' आंदोलन एक ओर साठोत्तर समाज में उत्पन्न हुई जीवन स्थितियों की भयावहता का नतीजा तो है ही, उसके साथ ही वह नयी कहानी की जड़ता को तोड़ने का प्रयास भी है। डॉ.गंगा प्रसाद विमल इस संदर्भ में कहते हैं–"अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल्य की स्थापना का अस्वीकार है।"[12]

अकहानी की संज्ञा ही नेषाधात्मक है। इस में 'अ' निषेधसूचक है। इस संज्ञा से यह भ्रम हो सकता है कि ये लेखक कहानी ही नहीं लिख रहे हैं जबकि सत्य यह है कि लिख ये भी कहानी ही रहे हैं। अकहानी कहानी के स्वीकृत मानों को तोड़ती है एवं जीवन-संदर्भों को कहीं अधिक खुलेपन के साथ व्यक्त करती है। अकहानी का बड़ा गहरा रिश्ता नई कहानी से है। वह उसके कुछ सूत्रों का विकास, विस्तार करती है। अकहानी कथा नहीं कहती बल्कि विश्रृंखल कथाओं की एक श्रृंखला ही प्रकट करती है, जो बिलकुल जीवन की तरह होती है। यह कहानी यह मानती है कि जीवन में कुछ भी कलात्मकता के साथ न तो

शुरू होता है और न शेष । इसलिए यह कहानी भी कलात्मकता से न तो शुरू होती है न शेष । यह कहीं भी, कभी भी शुरू होकर कहीं भी, कभी भी ख़त्म हो सकती है । हिंदी अकहानी आंदोलन पश्चिम की तरह से अतिवादी नहीं है । अत: नई कहानी की वस्तु एवं रूप का विरोध करते हुए भी वह उससे जुड़ी हुई है ।

अकहानी का संबंध मूल्यों से उतना नहीं है, वह तो समकालीन जीवन के टूटे हुए, असंगत, अंतर्विरोधग्रस्त यथार्थ को पहचानती है और एक नए शिल्प की तरह उसे रूपायित करना चाहती है । यहां जीवन का यौन-सत्य ही प्रबल रूप में सामने आया है । अकहानी संरचना में नयी कहानी का परवर्ती रूप है और अपनी चेतना में काफ़ी दूर तक मूल्यहीन हो चुके समकालीन मध्यवर्गीय समाज की संक्रांत वास्तविकता से जुड़ी हुई है ।

2.2.2. सचेतन कहानी :

साठोत्तरी कहानी की दूसरी शाखा है सचेतन कहानी । सचेतन कहानी आंदोलन का प्रारंभ सन् 1974 में प्रकाशित 'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक के प्रकाशन से माना जाता है, जिसका संपादन महीप सिंह ने किया । परवर्ती चरण में उन्होंने 'संचेतना' नामक पत्रिका का संपादन किया । यही पत्रिका सचेतन कहानी आंदोलन का प्रमुख मंच बन गयी । महीप सिंह के अनुसार सचेतनता एक दृष्टि है, वह दृष्टि जिसमें जिया भी जाता है और जाना भी जाता है । वे कहते हैं–"मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नहीं रही है । जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है ।"[13] सचेतन कहानी जीवन को नए तरीके से देखती है । इसमें यथार्थ-दृष्टि, जीवन-दृष्टि एवं परिवेश-दृष्टि का नया स्वरूप दिखाई पड़ता है । वह नया स्वरूप अपने परिवेश के प्रति सक्रिय भाव-बोध से युक्त होने को सचेतनता मानता है । यह कहानी आंदोलन नई कहानी आंदोलन

से इस अर्थ में अलग है कि इसमें जीवन की घुटन को बारबार दुहराया नहीं जाता है बल्कि मनुष्य के "टोटल-सेल्फ" को प्रकाशित एवं स्थापित किया जाता है । यह कहानी मानव एवं मानवता की खोज करती है । सचेतन कहानीकारों में महीप सिंह, मनहर चौहान, बलराज पंडित, राम कुमार भ्रमर, वेद राही आदि महत्त्वपूर्ण हैं ।

सचेतन कहानी में नैराश्य, अनास्था और बौद्धिक तटस्थता का प्रत्याख्यान किया जाता है और मृत्यु-भय, व्यर्थता एवं आत्म पराभूत चेतना का परिहार किया जाता है । इस कहानी में आत्म सजगता तो है ही, उसके साथ ही संघर्षेच्छा भी है । यह कहानी व्यक्ति और समाज की टूटती आस्थाओं के बीच नए मूल्यों के निर्माण करने क स्वर को मुखरित करती है । कथाकार महीप सिंह ने सचेतन कहानी की व्याख्या करते हुए लिखा है– "सचेतन कहानी सक्रिय भाव-बोध की कहानी है । वह ज़िंदगी की स्वीकृति की कहानी है । पश्चिम की भौंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर ज़िंदगी की व्यर्थता, नितांत अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती ।"[14] इस धरातल पर यह कहानी नयी कहानी से पृथक् है हालांकि सचेतन कहानी आंदोलन के वक्त अकहानी आंदोलन की प्रतिष्ठा ही नहीं हुई थी । सचेतन कहानी सही अर्थों में मानव-जीवन की आत्मसजगता, जागरूक चेतना और संघर्षशीलता की कहानी है । उसके लिए परिवर्तित परिवेश को स्वीकार करना और जीना ही सचमुच सक्रिय होकर जीना है । इस कहानी का महत्त्व यही है कि इसने सातवें दशक में कहानी की जड़ता को तोड़ दिया और उसे फिर जीवन की ओर मुड़ने के लिए प्रेरित किया ।

2.2.3. सहज कहानी :

साठोत्तरी कहानी की एक अन्य प्रवृत्ति है सहज कहानी । यह कहानी भी नयी कहानी की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई थी । यह अमृत राय की खोज है । सन् 1968 में 'नयी कहानियाँ' पत्रिका का स्वामित्व श्री अमृत राय ने खरीद लिया था और वे अपने संपादन में इसका प्रकाशन इलाहाबाद से करने लगे । इस पत्रिका के संपादकीय को वे 'सहज कहानी' शीर्षक से लिखने लगे । सहज कहानी अमृत राय से शुरू होकर उन्हीं पर समाप्त हो गई । इसे सुधा अरोड़ा के नाम मात्र के सहयोग के अलावा किसी अन्य कहानीकार का समर्थन न मिला । अमृत राय द्वारा लिखित संपादकीयों से 'सहज कहानी' की जो विशेषाएँ सामने आती हैं, वे निम्नवत देखी जा सकती हैं :

(1) सहज कहानी का कथाकार अपनी कथा-दृष्टि में रस को महत्त्व देता है । सार्थक कहानी का आधार कथा-रस है ।

(2) सहज कहानी के लेखक का 'विषय' ही उसकी रचना का सहज होता है । लेखक को रचना की प्रेरणा सहज स्थिति से प्राप्त होती है । अतः वह उसके लिए महत्त्वपूर्ण है । सहज संवेदना की भूमि पर ही अवस्थित होकर उत्तम कोटि की कहानी लिखी जा सकती है ।

(3) सरसता के अलावा सहज कहानी को अच्छी, प्राणवान और सशक्त होने की शर्तें भी पूरी करनी हैं । इसमें वह क्षमता होनी चाहिए कि वह पाठक को संवेदित कर सके । इस प्रकार से कहा जा सकता है कि हृदयस्पर्शी होना ही इस कहानी की कसौटी है ।

2.2.4. समांतर कहानी :

साठोत्तर कहानी के अंतिम चरण में समांतर कहानी आंदोलन उभर कर सामने आया । इसका सूत्रपात कमलेश्वर ने सन् 1972 के क़रीब किया । वे उन दिनों 'सारिका' पत्रिका के संपादक हुआ करते थे । उन्होंने उसकी संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से यह कार्य प्रारंभ किया । इसी समय समांतर कहानी पर उन्होंने इब्राहीम शरीफ, कामतानाथ, ललित मोहन अवस्थी तथा रामवचन राय के आलेखों का प्रकाशन किया । कमलेश्वर ने कामतानाथ, से.रा.यात्री, इब्राहीम शरीफ, जितेन्द्र भाटिया, राम अरोड़ा, हिमांशु जोशी, दिनेश पालीवाल, मिथिलेश्वर आदि युवा कहानीकारों का समर्थन प्राप्त किया और कमलेश्वर के ही नेतृत्व में 'समांतर कहानी' पर गोष्ठियाँ आयोजित की गईं, जिनके सचित्र विवरण 'सारिका' में प्रकाशित किए गए । 'सारिका' पूरी तरह से समांतर कहानी का मंच बन गयी । कमलेश्र ने समांतर कहानी पर धारावाहिक रूप से तीन विशेषांक निकाले ।

समांतर कहानी ने 'आम आदमी' की प्रतिष्ठा की थी । यह जीवन के यथार्थ को बड़ी सहजता के साथ प्रस्तुत करती है । यह जन-सामान्य से सीधी बात करने की समर्थक है । 'समांतर-1' (1972) को हिंदी कहानी में परिवर्तन का दूत कहा जा सकता है । इसकी भूमिका में लेखक की प्रतिबद्धता, नयी रचनाशीलता आदि समांतर कहानी के विविध पक्षों पर हुई चर्चाओं का रिपोर्ताज के रूप में प्रकाशन हुआ । कामतानाथ ने कहानी के संदर्भ में समय के सत्य की पहचान करते हुए लिखा है-"समय के सत्य से मेरा तात्पर्य उन आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, अथवा संस्कारगत दबावों से है, जो हर समय मानव जीवन को तोड़ते, बनाते, बदलते रहते हैं एवं जिनके विरुद्ध संघर्ष जीवन की एक जरूरी शर्त है । समांतर कहानीकार वामपंथी हैं। लेकिन इस वामपंथी

में अवसरवादी राजनीति या उसके छद्म सिद्धांतों के लिए कोई स्थान नहीं है।"[15]

समांतर कहानीकारों ने रचनाकार की प्रतिबद्धता को व्यापक अर्थों मे देखा और वे इसे आज के संदर्भों से जोड़कर देखते हैं। सामान्यत: इसे वामपंथी विचारधारा से जोड़कर देखा जाता है। परंतु समांतर कहानी सीधे-सीधे वामपंथी विचारधारा को स्वीकारने की आवाज़ बुलंद नहीं करती। मार्क्सवादी विचारधारा अपने को गतिशील रखने के लिए समय और परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने पर बल देती है। यही दृष्टिकोण समांतर कहानी लेखन के मूल में कार्य कर रहा है। इस प्रकार इस कहानी आंदोलन का रुझान वामपंथी विचारधारा की ओर है।

समांतर कहानी आम आदमी के द्वारा आम आदमी के लिए लिखी गई आम ज़िंदगी की कहानी है। इसमें आम आदमी ही एक लेखक की हैसियत से आज के जीवन की जटिलताओं एवं संघर्षों को शब्द देता है। इसलिए यहां रचनाकार सामान्य जन जीवन से स्वयं को संबद्ध मानता है।

समांतर कहानी आंदोलन कमलेश्वर की महत्त्वाकांक्षा का परिणाम था। अपने ऊँचे दावों के बावजूद यह आंदोलन कतिपय संकीर्णताओं से ग्रस्त था। कमलेश्वर की अति महत्त्वाकांक्षा और साहित्येतिहास में अपनी स्थापना की प्रवृत्ति ने समांतर कहानी की लुटिया डुबो दी।

2.2.5. सक्रिय कहानी :

सन् सत्तर के बाद सक्रिय कहानी आंदोलन प्रकाश में आया। इसका

सूत्रपात 'मंच' के संपादक राकेश वत्स ने किया। इसकी अवधारणा सन् 1979 ई. में राकेश वत्स 'मंच' के दो विशेषांकों को निकाल कर प्रस्तुत करते हैं। यह कहानी वर्त्तमान आर्थिक, सामाजिक, शोषण के विरोध को अपनी मूल संवेदना मानती है। इस दृष्टि से वह समांतर कहानी तथा जनवादी कहानी के बीच की कड़ी है और उनके बेहद क़रीब है। इन तीनों आंदोलनों की दृष्टि वामपंथी है। डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ इन तीनों आंदोलनों पर इसी संदर्भ में लिखते हैं-"जिस तरह देश में कई कम्युनिष्ट पार्टियाँ हैं और मार्क्सवाद में गहरी आस्था के बावजूद उनमें कई मसलों पर असहमति है, ठीक उसी तरह ये तीनों आंदोलन वामपंथी चिंतन से संचालित होने के बावजूद पार्थक्य रखते हैं।"[16]

सक्रिय कहानी समांतर कहानी और जनवादी कहानी का मिश्रण प्रतीत होती है परंतु सक्रिय कहानी सक्रिय पात्रों और सक्रिय विचारों की कहानी है। उसमें पुराने मूल्यों को विस्थापित करने या सही मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष है। सक्रिय कहानी सक्रियता के माध्यम से समाज के उत्पीड़न एवं शोषण के चक्र को तोड़ना चाहती है। उसके केन्द्र में सामान्य मनुष्य है। परंतु यह कहानी आंदोलन राकेश वत्स से शुरू होकर उन्हीं पर ख़त्म हो गया।

इस प्रकार साठोत्तरी कहानी ने विविध समय पर अपने रूप-स्वरूप में कई कहानी आंदोलनों के माध्यम से परिवर्तन किया। इससे हिंदी कहानी का कोष समृद्ध हुआ है। अपनी प्रवृत्ति में नयी कहानी के ही विविध पक्षों को लेकर कई कहानी आंदोलन उठ खड़े हुए, जिनका समुच्चय है साठोत्तरी कहानी। इसने एक तरफ़ जहां समाज की गंदगी को चित्रित किया, वहीं दूसरी तरफ़ सामान्य मनुष्य की घृणा और परिवर्तन की चाह को शब्द देने का प्रयास किया। यह शैल्पिक धरातल पर भी हिंदी कहानी में विराट परिवर्तन का दूत बनकर आयी।

2.3 साठोत्तरी हिन्दी कहानी के संवेदनात्मक धरातल और ज्ञानरंजन की कहानियाँ :

साठोत्तरी हिंदी कहानी ने हिंदी कहानी की शक्ल ही बदलकर रखा दी इस कहानी ने संवेदना के नए धरातलों को स्पर्श किया। यह वह समय था जब हमारे समाज का मध्यवर्ग अपनी चेतना में संक्रमण और परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा था। डॉ. के. एम. मालती इस संदर्भ में लिखती हैं-"साठोत्तर युग में एक तरह से नयी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियाँ उभर आयीं। संयुक्त परिवार का विघटन तेज़ी से शुरू हो गया था। परंपरागत नैतिक आदर्श टूटते जा रहे थे और पारिवारिक संबंधों में बदलाव आ गया था। दहेज की प्रथा और अनमेल विवाह की समस्या अपने नए संदर्भों में फिर से उभर कर आयी थी। साठोत्तर कहानियों में इन बदलते जीवन मूल्यों और परिवर्तित विचार भूमियों का यथार्थ चित्रण मिलता है।"[17]

साठोत्तर कहानी का स्वरूप नयी कहानी से थोड़ा-सा अलग है। नयी कहानी ने संबंधों के प्रति द्वंद्वात्मक रवैया अपनाया था, परंतु साठोत्तर कहानियों ने मानवीय स्थिति से मानवीय संबंधों की विकास-यात्रा के सामाजिक आधारों की खोज की है। साठोत्तर कहानीकार कहानी विधा के अंतर्गत शब्दों में जीवन का प्रतिबिंबन करने के क्रम में अपने परिवेश से अपनी अनुभूति की यात्रा करता है। यहां वह मानवीय संवेदनाओं की जांच-पड़ताल करता नज़र आता है।

हिंदी कहानी के क्षेत्र में सन् 1960 से सन् 1970 तक का समय और उसमें भी सन् 1964 से सन् 1970 तक विशेषतया, विभिन्न कहानी आंदोलनों और हिंदी कहानी के भविष्य के कहानीकारों के पल्लवन का समय था। यही वह समय था

जब कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव स्वयं को इतिहास पुरुष बनाने एवं स्थापित करने की होड़ में लगे हुए थे । यह ऐतिहासिक रस्सा-कस्सी लोग भी समझने लगे थे । इस दशक के परवर्ती चरण में हिंदी कहानी का बेहतरीन चेहरा और विकृत चेहरा, दोनों ही सामने आए । इसी संदर्भ में अतुलवीर अरोड़ा का मन्तव्य है–"देखने योग्य बात यह है कि इस दशक के उत्तरार्द्ध में कहानी का बेहतरीन रचनाशील रूप और बेहद विकृत चेहरा-दोनों एक दूसरे के टकराव में जमकर सामने आते हैं । आज अगर इस तमाम लेखन में से बेहतरीन को छांटकर अलग किया जाए तो कहानी की जो विरासत हमें उपलब्ध होती है, उसमें ज्ञानरंजन की हिस्सेदारी बखूबी निभाई गई दिखाई देती है । बखूबी इसलिए कि इस कहानीकार ने किसी तरह के दावेदार किस्म के लेखन को जीवन सापेक्ष रखने का प्रयास किया है, भले ही अधिकांशत: इसका लेखन एक वर्ग विशेष (मध्यमवर्ग) के हिस्से में चला गया है, लेकिन यहाँ भी ज्ञानरंजन की मुद्रा अपने समकालीनों से अलग इसलिए पड़ती है कि उनका मध्यवर्गीय वकालती अंदाज नदारद है ।"[18]

ज्ञानरंजन की कहानियों में वस्तु-पक्ष बार-बार मध्यवर्ग से अपना कलेवर हासिल करता है परंतु उन्होंने अपने कथा-लोक के निर्माण के क्रम में हिंदी कहानी को एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा किया है, जहां से वे एक तरफ़ नयी कहानी से अलग अपना अस्तित्व स्थापित करते हैं तो दूसरी तरफ़ अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी आंदोलनों, जो उनके समसामयिक आंदोलन थे, से वे अपना पार्थक्य प्रदर्शित करते हैं । अतुलवीर अरोड़ा ने इस संदर्भ में कहा है- "ऐसे परिवर्तनों (उनके युग के) के क्रम के संदर्भ में ज्ञानरंजन की कहानियाँ हिंदी कहानी के इतिहास में घटने वाली उन 'बदकिस्मत' घटनाओं की साक्षी हैं, जिनके चलते हिंदी कहानी की रचनाशीलता को इतिहास की द्वंद्वात्मकता से

विच्छिन्न होना पड़ा और जिन्होंने एक लंबे अर्से के लिए हिंदी कहानी को उसकी मुख्य चेतना-धारा से काट दिया।"[19] वे इसके बुरे नतीजे की ओर भी इसी क्रम में संकेत करते हैं और हिंदी कहानी के भविष्य की ओर इशारा करते है–"ऐसे बहुत से अवरोधों के कारण ही हिंदी कहानी की चर्चा 'नयी शुरूआत', 'और एक शुरूआत', 'कहानी नई पुरानी' या 'फ़ैशन' आदि मुहावरों की लपेट में आ गई, जिनकी शास्त्रीय कृपा यह हुई कि कहानी अपने कथ्य और रूपगत बदलावों के संकेतों और घोषणाओं के साथ चर्चा के स्तर पर 'दिलचस्प', 'जटिल' और 'उत्तेजक' तो होती ही गई, साथ ही उसका हश्र हद दर्जे की घिनौनी व्यावसायिकता में भी संपन्न हुआ।"[20]

सन् साठ के बाद हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का तेज़ी से पतन हुआ। इसका सीधा असर संबंधों पर आया। इसके बारे में नरेन्द्र मोहन का कहना है–"सातवें दशक के शुरू होते ही हमने पाया कि हम एक दूसरे माहौल में आ गए हैं, जहां हमारे नैतिक मूल्य और मान्यताएँ अटपटी-सी लगने लगी हैं। निस्संदेह यह संपूर्ण मोहभंग की घड़ी थी, जिसे हम पिछले एक दशक से टालते आ रहे थे। मोहभंग के इस साक्षात्कार द्वारा समभ की निर्मम सच्चाइयों के साथ हमारा संबंध जुड़ने लगा और मानव नियति की क्रूरता और भयावहता हमारे प्रत्यक्ष होने लगी।"[21] वस्तुत: साठोत्तर एक ऐसी पीढ़ी उभर कर आयी, जिसे अपने युगीन मूल्य प्रिय थे। वह पुराने मूल्यों एवं आदर्शों के प्रति नफ़रत से भरी हुई थी। इस दौर की कहानियों में रूढ़ नैतिकता पर कठोर प्रहार देखने को मिलता है। रचनाकार की इतिहास-दृष्टि कलागत नवीनता एवं मौलिकता की पोषक होती है। साठोत्तरी कहानी के रचनाकारों ने अपने युगीन वैयक्तिक मूल्यों को सामाजिक मूल्यों में 'इंजेक्ट' करना चाहा था। इस क्रम में वे निषेध का स्वर भी फैलाते हैं।

2.3.1 संबंधों में विघटन की स्थिति :

साठोत्तर दौर में परिवार विघटित होने लगते हैं । परिवार व्यवस्था की पीढ़ियों से स्थापित मान्यताएँ ध्वस्त होने लगीं । व्यक्ति अपने ही आवृत्त में बंदी होकर रह गया । यहां तक कि व्यक्ति अपने घर के प्रति भी अब संवेदनशील नहीं रहा था । 'शेष होते हुए' कहानी का मझला अब कभी-कभार ही अपने घर आता है और घर आने पर उसे घर के लोगों से मिलने का कोई उत्साह नहीं रह गया है–"अपना हैडंबैग और सूटकेश रिक्शे से उतारकर मझला घर के सामने खड़ा हो गया है । रिक्शा जाते हुए झनझना रहा है, फिर भी सन्नाटे में कोई फ़र्क नहीं है । मझला शीघ्रता से घर में घुस नहीं जाना चाहता । वह रुका है ।"[22] संयुक्त परिवारों में विघटन की समस्या एवं तद्विषयक टूटती नैतिकता पर भी ज्ञानरंजन की नज़र पड़ी है । वे 'हास्यरस' कहानी में पति द्वारा पत्नी के संदर्भ में जो चिंतन किया जा रहा है, उस पर लिखते हैं–"पहले मैं (पति) इससे (पत्नी से) कितनी हसीन बातें किया करता था । उधर परदे पर फ़िल्म चलती रहती थी इधर बातें । रेस्तराँ में, सड़क पर, टेलीफोन पर, बरामदों में और बातें कभी ख़त्म नहीं हुईं । और इस वक्त मैं कब से कोशिश कर रहा हूँ, एक भी वाक्य नहीं बन पा रहा है । पता नहीं कहां भाग गए सारे-के-सारे रमणीक शब्दों के प्रेमपरक वाक्य विन्यास । केवल सन्नाटा है ।"[23] यही है जीवन की कठिन सच्चाई जहां व्यक्ति गैर-रोमांटिक हो जाता है । उसका सौंदर्यबोध, उसकी रूमानियत सब कुछ उससे छिन जाते हैं । साठोत्तर कहानी ने जीवन की इस विडंबना पर बड़ी बेबाकी से अपनी बात रखी है ।

भारतीय समाज में बड़े-बुजुर्गों का सम्मान करना एक आदर्श है । उन्हें आराम देना एक तहजीब मानी जाती है परंतु साठोत्तर समाज में कुछ ऐसा परिवर्तन घटित हुआ कि छोटा अपने छोटेपन पर उतर आया और उसने बड़े का

बडप्पन चोटिल कर दिया । 'शेष होते हुए' कहानी में ज्ञानरंजन लिखते हैं–"लेकिन भाभी और तारा दोनों को घर से विशेष सरोकार नहीं रहता । अम्मा अकेले गृहस्थी में घुली जा रही हैं ।"[24]

साठोत्तर समय में हमारे सामाजिक ढांचे में ढेरों परिवर्तन घटित हुए । इन परिवर्तनों ने साठोत्तरी कहानी को भी प्रभावित किया । मानव सभ्यताओं का विकास समाज के बीच ही हुआ । समाज मानव को मानव से जोड़ने वाली कड़ी बना । व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की संपूर्णता समाज के ही माध्यम से अर्जित करता है । अत: वह व्यक्ति चेतस् होकर भी समाज विरोधी नहीं हो सकता है । समाज ही व्यक्ति के व्यक्तित्व की संस्तुति करता है । अत: व्यक्ति अपने परिवेश से कटकर जीवित नहीं रह सकता है । इसी संदर्भ में डॉ. के. एम. मालती का कहना है–"परिवेश के अंतर्गत मनुष्य का बाह्य वातावरण, उसकी मानसिक स्थितियों और उसके मानस पर होने वाली बाह्य स्थितियों की प्रतिक्रियाएँ भी आ जाती हैं ।"[25]

हिंदी कहानी के परिप्रेक्ष्य में मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग को दो विश्वयुद्धों और भारतीय स्वतंत्रता के बाद अनेक आंतरिक एवं बाह्य संघर्षों से जूझना पड़ा । इसी कारण इस दौर की कहानी मानव के आत्म संघर्ष से गुजरती है । साठोत्तर व्यक्ति की अनुभूतियाँ एवं संवेदनाएँ परिवर्तित हो रही थीं । तत्कालीन युवा पीढ़ी बेकारी, उद्देश्यहीनता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता एवं मोह-भंग के मकड़जाल में फंस चुकी थी । 'क्षणजीवी' कहानी में ज्ञानरंजन अपने बेरोजगार नायक के द्वारा कहलवाते हैं– "मैंने अभी कई बार उधर देखा है जब कि थोड़ी देर पहले ही मैंने यह भी चाहा था कि दनादन ढेर सारी रायफलें छूट जाएँ, छूटती रहें और तब तक न बंद हों जब तक कि मेरे बूढ़े रिटायर्ड बाप के काँपते हाथों से किया गया

वह मनी आर्डर मुझे न मिल जाए जो वह सौ रूपए की गरीब पेंशन में से मुझे एक क्लर्क होने की उम्मीद में भेजता रहता है।"[26]

स्वातंत्र्योत्तर ईमानदारी, निष्ठा और वफ़ादारी जैसे शब्द हमारे समाज से चुक-से गए थे। प्रशासन और नेताओं का एक घिनौना चेहरा सामने आया जहां भ्रष्टाचार के गिद्ध ने अपने पंख हमारे समाज पर पसार दिए। 'क्षणजीवी' कहानी में कहानी का नायक अपनी पूर्व प्रेमिका और अब किसी और की पत्नी बन चुकी शांती के सरकारी सेवारत पति के संबंध में सोचता है– "रफ्ता-रफ्ता एक उत्तेजना मुझमें जगी। इसका कारण शायद यह भी था कि मुझे शांती का घूसख़ोरी में बना धनवान पति भुलाया नहीं जा रहा है। मुझे चौराहे पर भीड़ एकत्र करके भाषण करने का उत्साह झिंझोड़ने लगा। मैं पता नहीं राजनीतिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध क्या-क्या बड़बड़ाने लगा।"[27] व्यवस्था के प्रति यह साठोत्तर सामान्य मनुष्य का नपुंसक क्रोध है, जो अपनी स्थितियों के आगे विवश है।

साठोत्तर समाज का व्यक्ति अपनी स्थितियों से जूझते एवं टूटते हुए अपने परिवेश से संघर्ष कर रहा था। वह नवीन मानवीय दृष्टिकोणों की खोज कर रहा था। संयुक्त परिवारों का ऐसे में दम निकल रहा था। ज्ञानरंजन साठोत्तर उपजी इस मानसिकता को 'शेष होते हुए' कहानी में दर्शाते हैं–"जिधर सहजन, केला और कटहल थे, उस पिछवाड़े की ज़मीन भैया ने अपना मकान बनवाने के लिए ले ली है। पेड़ों को कटवा के उन्होंने अपने नए और पृथक् जीवन की नींव डालनी शुरू कर दी है।"[28]

साठोत्तर दौर में जहां एक तरफ़ संयुक्त परिवार टूट रहे थे, वहीं दूसरी

ओर एकल परिवार भी कठिन परिस्थितियों से गुज़र रहे थे । पति एवं पत्नी के संबंधों से विश्वास, प्रेम, निष्ठा और समर्पण जैसे शब्द धीरे-धीरे गायब हो रहे थे । दांपत्य जीवन में एक-दूसरे के अहं की टकराहटें बढ़ रही थीं । दांपत्य जीवन में भी एक बड़ा भारी असंतोष उभर कर सामने आ रहा था । 'हास्य रस' कहानी में पति अपनी पत्नी के संबंध में सोचता है–"ऐसी, स्त्रियों के चरित्र का क्या भरोसा किया जाए ? कब किस दूसरे पर फिसल पड़ें । फिर भी देखा जाएगा । मुझे काफ़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी ।"[29] यह एक ऐसा समय था जब पति और पत्नी दोनों एक दूसरे पर शक़ करने लगे थे क्योंकि समाज में शादीशुदा जीवन से पृथक् गैर पारंपरिक एवं अवैध संबंध भी बनने लगे थे । 'दांपत्य' कहानी में ज्ञानरंजन कथानायक के द्वारा कहलवाते हैं–"इन दिनों पुरुषों की तलाश में जुटी हुई विवाहिताओं का स्केल तेज़ी से ऊँचा होता जा रहा है । माना कि यह सभ्यता के विकास और उसमें बढ़ती उदारता का लक्षण है । इसमें स्वतंत्रता का स्वाद भी है लेकिन कुछ दूसरी, अंदरूनी और गुप्त वजहें भी हैं ।"[30] यह वही समय था जब पति और पत्नी एक दूसरे से ऊबने लगे थे क्योंकि उनकी महत्त्वाकांक्षाएँ और चाहनाएँ एक-दूसरे से कहीं अधिक प्राप्ति की अपेक्षायें रखती थीं । मोहन राकेश की नाट्य-कृति 'आधे-अधूरे' (1969) में सावित्री एवं उसके पति के तनावपूर्ण संबंध भी इसी बात पर मुहर लगाते हैं । इस अतिशय अपेक्षा के कारण उनकी ज़िंदगियाँ किसी भी सूरत में आधी-अधूरी ही रहेंगी । दांपत्य जीवन का यह नर्क एवं इसके कष्ट वाकई काफ़ी डरावने हैं । ज्ञानरंजन ने भी 'दांपत्य' कहानी में इसी तरफ़ संकेत किया है–"लोग जब देखो तब पूछ बैठते हैं कि तुम उदास क्यों हो । कभी कहता हूँ, मार्टिन लूथर किंग की हत्या से मन बहुत गुमसुम हो गया है, कभी कहता हूँ आज दोपहर की निद्रा से ऐसा हो गया होगा । और कभी उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अप्रैल का धूल भरा मौसम । किससे कहूँ कि असलियत है दिनभर, रातभर सोती हुई यह औरत ।"[31]

साठोत्तरी कहानी ने संबंधों के परिवर्तित रूपों में से एक नयी एवं पुरानी पीढ़ियों के द्वंद्व को भी व्यक्त किया है। यह 'जेनेरेशन गैप' को एक समस्या के रूप में उठाती है। साठोत्तरी कहानी ने संतान और माँ-बाप के रिश्तों में आए हुए बदलाव को संबंधों में छीजती उष्णता के संदर्भ में देखा है। यह वह समय था जब पुत्र के लिए पिता के आदर्श मान्य नहीं रह गए थे। वह अपने युग के अनुरूप आचरण संहिता का निर्माण करना चाहता था, जो पुरानी पीढ़ी को स्वीकार्य नहीं था। ज्ञानरंजन के स्वयं के जीवन में भी कुछ ऐसा ही घटित हुआ था। उनके पिता पर गांधीजी और कांग्रेस की नीतियों का गहरा प्रभाव था। उनके पिता ने गांधीजी के गुजरात दौरे पर उनके निजी सचिव के तौर पर कार्य किया था। ज्ञानरंजन वामपंथी विचारधारा से प्रभावित थे। वे विश्वविद्यालयीन राजनीति में इस मत को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इनके पिता ने इन्हें खादी पहनाना चाहा परंतु ये उसे पसंद न करते थे। इसका कारण था कांग्रेस का शोषितों के प्रति स्वातंत्र्योत्तर दौर में ग़लत रवैया। अत: युवावस्था में ही इन्होने खादी जो कांग्रेस का प्रतीक थी, का बहिष्कार कर दिया। ये विद्रोही थे, क्रांतिकारी नहीं। उनकी रचनाएँ घर की व्यवस्था, खान-पान, विचार, संस्कृति के धरातल पर विद्रोह की परिणति हैं। उन्होंने अपने पिता से अपना वैचारिक मतभेद कायम रखा, परंतु अपने पिता के प्रति वे आजन्म सश्रद्ध रहे। अपनी 'पिता' कहानी में उन्होंने पिता के प्रति बच्चों में उत्पन्न होते वैचारिक विद्रोह को व्यक्त किया है। उसे मानवीय कटुता से संयुक्त करके देखना उचित जान नहीं पड़ता है। इस कहानी में पिता-पुत्र के अंतर्संबंधों की गहन जांच-पड़ताल दिखाई पड़ती है। उनके बीच प्रेम का खेल किस प्रकार चल रहा है, कहानी इस सच का रूपायन करती है। इसी के बीच से कहानी पीढ़ियों के द्वंद्व से उत्पन्न वैचारिक पार्थक्य का भी चित्रण करती है। अपने अनुभूत सत्य को 'पिता' कहानी

में व्यक्त करते हुए ज्ञानरंजन लिखते हैं–"फिर उसने दृढ़ता से सोचा, पिता अभी बूढ़े नहीं हुए हैं । उन्हें प्रतिक्षण हमारे साथ-साथ जीवित रहना चाहिए, भरसक । पुरानी जीवन व्यवस्था कितनी कठोर थी, उसके मस्तिष्क में एक भिंचाव आ गया । विषाद् सर्वोपरि था ।"[32] बात यहीं पर समाप्त नहीं होती । पिता की विचारधारा एवं जीवनशैली से उनकी संतानें उनके प्रति प्रेम एवं श्रद्धा रखते हुए भी, उनसे अपना विरोध प्रकट करती हैं । ज्ञानरंजन इसी कहानी में एक स्थान पर लिखते हैं–"वे पुत्र, जो पिता के लिए कुल्लू का सेब मंगाने और दिल्ली एंपोरियम से बढ़िया धोतियाँ मंगाकर उन्हें पहनाने का उत्साह रखते थे, अब तेज़ी से पिता विरोधी होते जा रहे हैं । सुखी बच्चे भी अब गाहे-बगाहे मुंह खोलते हैं और क्रोध उगल देते हैं ।"[33]

2.3.2 स्त्री-पुरुष संबंधों का नया समीकरण :

साठोत्तर समय में जब स्त्री-पुरुष संबंधों का समीकरण बदला तो प्रेम एवं यौन दृष्टिकोण में परिवर्तन अवश्यंभावी था । 'एक दुनिया समानांतर' की भूमिका में वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव ने स्त्री-पुरुष संबंधों के परिवर्तित स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– "संबंधों के क्षेत्र की सबसे अधिक भीषण संक्रांतियों से गुज़रना पड़ा है नारी और पुरुष के आपसी संबंधों को । आज के कथाकार ने शायद सबसे अधिक कहानियाँ इसी संबंध को लेकर लिखी हैं । आज ही क्यों समाज और कला का तो चिरंतन निर्णायक विषय ही यही रहा है । हाँ, यह तो जरूरी है कि पुरुष प्रधान समाज में अधिकतर पुरुष ने ही नारी को केन्द्र बनाकर अपनी भावनाओं या चिंतन को अभिव्यक्ति दी है ।"[34] ज्ञानरंजन के लेखन काल में समाज में स्त्री स्वातंत्र्य के क्षेत्र में परिवर्तन तो आ रहा था, परंतु अभी भी स्त्री-समुदाय का बड़ा हिस्सा घर की चौकठ के भीतर ही था । मध्यवर्गीय समाज में परदा प्रथा बनी हुई थी, जिसके कारण स्त्री का बाहरी दुनिया से संपर्क पुरुष

जितना नहीं हो पाया था । परिणामस्वरूप स्त्री अभी संकोच के भंवर में डूब रही थी । परिवार ही स्त्री की शुरूआत और अंत था । ज्ञानरंजन स्वयं लिखते हैं–"उन दिनों लड़कियों से कोई बात नहीं करता था वे मनुष्य समाज से निकाली हुई होती थीं । दस साल की लड़की भी इसे जानती थी । लड़कियों के लिए यह अपमानजनक था कि अन्य चीज़ें उनसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण समझी जाएँ । पर इसकी जानकारी मुझे तब नहीं थी । वे मेरे मुहल्ले में चीटियों की तरह निकलतीं या टिड्डियों की तरह । क्लब में आनंदमठ देखने जाती होतीं । दूसरे दिन यह दल सर पटक के मर जाइये, देखने में नहीं आता था ।" [35] इसलिए ज्ञानरंजन की कहानियों में स्त्री पात्र कम ही नज़र आते हैं ।

2.3.3 प्रेम का नया चेहरा :

प्रेम के संदर्भ में कहते हुए वे अपनी 'शेष होते हुए' कहानी का संदर्भ देते हैं और टिप्पणी करते हैं– "पर एक कहानी 'शेष होते हुए' बहुत सराही गई, बहुत लोकप्रिय हुई । उसने मुझे जानकारी में ला दिया । यह कहानी प्रेम के निर्वाण की कहानी थी । इसके बाद मैं एक-दूसरे मार्ग पर पहुँच गया । मैंने प्रेम के अमरत्व पर नहीं, प्रेम के विनाश की ही कुछ कहानियाँ लिखीं ।"[36] ज्ञानरंजन ने मध्यवर्गीय समाज में प्रेम के नाम पर चलने वाले मतलबी संबंधों का मजाक उड़ाया है । वे प्रेम के नाम पर चलने वाले यौन व्यापार को बेनक़ाब कर देते हैं । ज्ञानरंजन ने स्पष्ट रूप से सेक्स को लेकर कहानियों की रचना की है । 'हास्य रस' कहानी के संबंध में डॉ. यशपाल वैद लिखते हैं– "'हास्य रस' कहानी तो कामसूत्र की बानगी लिए हुए है और पति-पत्नी का कामुक हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, किंतु इन निजी संबंधों को व्यक्त करने में ज्ञानरंजन कहीं-कहीं चटखारे लेते हुए दिखाई देते हैं और पाठकों के मन को गुदगुदाने की कोशिश में प्रकृत चित्रण में अश्लीलता आती दिखाई देती है ।"[37] इसी कहानी में

नायक अपनी पत्नी की बहन के बारे में सोचता है–"वह भोली है और सबसे ख़ास बात यह कि उसको सुंदर कहते वक्त कोई धक्का नहीं लगता। यकीनन वह इससे बेहतर है, मुझे उसको ही पाना चाहिए था। क्या मुझे ख्याल नहीं, उसने कम-से-कम दो-तीन बार कहा था, आप हमसे इस तरह कभी नहीं बोलते जैसे शिखा बहन से बोलते हैं, हां-हां ख्याल आ गया।"[38]

'दांपत्य' कहानी में तो उन्होंने पति-पत्नी के यौन संबंधों का खुलकर जिक्र किया है। वे दिखाते हैं कि यहां भी ईमानदारी की कमी है और दिखावा ही ज़्यादा है-"उसने मुझे तीन-चार बार चूम लिया। इसीलिए वह आई थी। शायद वह दो-एक चुंबन और लेती लेकिन इसी बीच उसका तौलिया नीचे गिर गया।"[39] अपनी 'रचना प्रक्रिया' कहानी में वे देह धर्म के संदर्भ में प्रेम की व्याख्या करते हुए लिखते हैं–"इसीलिए प्रेम के लिए सुंदर से अधिक स्वस्थ लड़की का उपलब्ध होना जीवन में अधिक महत्त्वपूर्ण है।"[40] ज्ञानरंजन साफ़-साफ़ दिखलाते हैं इसी कहानी में कि–"पहले प्रेम के पीछे कुरबानी भी बहुत होती थी पर अब ऐसा नहीं के बराबर है क्योंकि एक प्रेम चला जाता है तो दूसरा तुरंत उपस्थित हो जाता है।"[41] 'हास्य रस' कहानी में 'प्रेम विवाह' की परिणति भी दर्शनीय है–"अभी-अभी विवाह होने के पूर्व मुझमें ख़ुशी और तत्परता थी और अब मैं दुखी हो गया हूँ।"[42] और इसी कहानी में एक स्थान पर वे लिखते हैं–"अगर प्रेम से छुटकारा मिल गया है तो इसमें दुःख की कोई बात नहीं हैं।"[43] अंततः इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि 'छलांग', 'हास्यरस' जैसी कहानियों में ज्ञानरंजन ने प्रेम में शरीर की चुहलबाजी को दर्शाया है, जहां प्रेम तो नहीं परंतु शरीर जरूर दिखाई पड़ता है। वस्तुतः 'हास्य रस' जैसी कहानियों के माध्यम से ज्ञानरंजन यह दिखलाने की कोशिश करते हैं कि प्रेम के क्षणों का ताज़ापन वैवाहिक जीवन की एकरसता की भयावह कल्पना से कैसे

क्षतिग्रस्त हो जाता है । आनंद प्रकाश ने इस संदर्भ में कहा है–"......युवक (पति) अपने भीतर होने वाले परिवर्तन की ओर पर्याप्त सचेत नहीं होता लेकिन पाठक यह देख कर चौंक सकता है कि युवक स्वयं भी स्त्री के प्रति घिसे-पिटे पुरुष सुलभ सस्ते वाक्य को मन-ही-मन कहता है और उस मध्यवर्गीय पुरुष-स्त्री के संबंध के बासीपन को अनायास ही उजागर कर देता है, जिसकी भयावह कल्पना ने उसे प्रारंभ में ही झकझोर दिया था ।"[44]

2.3.4 <u>नगरबोध का संदर्भ</u> :

नगरबोध साठोत्तर कहानियों का महत्त्वपूर्ण मुद्दा है । नगरों की सभ्यता, उनका चलन इस कहानी आंदोलन की धुरी है । ज्ञानरंजन की कहानियों में उनका नगरबोध स्पष्टत: उभरकर आता है । उनकी कहानियों पर लिखते हुए दूधनाथ सिंह ने लिखा है–"शहर उसकी (ज्ञानरंजन की) कहानियों का 'ओढ़ना-बिछौना' है । उसकी नींद है उसकी भूख-प्यास है, उसका चैन-हराम है, अंतरात्मा का धन है ।"[45] वे अन्यत्र इसी आलेख में लिखते हैं– "'शहर' ज्ञान की कहानियों का बीज शब्द है और वह भी सिर्फ़ इलाहाबाद । ज्ञान कहता है- 'मैं' अपना 'शहर' छोड़ नहीं पाया और मेरा शहर हमेशा के लिए मुझे 'लग गया ।'.......सच तो यह है कि यह शहर नहीं था जो हमेशा के लिए 'लग गया', यह उसकी कथा की अंतर्वस्तु थी ।"[46] ज्ञानरंजन के लिए शहर उनके विचारों की धुरी है । वहीं से उनकी कहानी का रूप और उसकी वस्तु का निर्माण होता है । दूधनाथ सिंह का इसी क्रम में आगे कथन है- "यह सच है कि वह अकेला कहानीकार था जिसके लिए यह शहर ही रचना की वस्तु थी । वह सचमुच इसका मालिक, जमींदार था । शहर उसके लिए 'हवेली' और 'बंदूक' दोनों ही था । शहर पूरी मिल्कियत थी उसकी और ठीक इसीलिए उसकी कथा का ठाट भी मात्र उसी की मिल्कियत है ।"[47] इस मुद्दे पर परवर्ती अध्याय में विस्तार से चर्चा की जायेगी ।

2.3.5 अजनबीपन और अकेलापन :

साठोत्तरी कहानी में अजनबीपन और अकेलेपन की भयावह स्थितियों का वर्णन भी मिलता है । डॉ. के. एम. मालती साठोत्तरी कहानी में अजनबीपन और एकाकीपन के कारणों की खोज करते हुए लिखती हैं- "जीवन और समाज की विसंगतियों के फलस्वरूप व्यक्ति को एकाकीपन, अजनबीपन और ऊब की अनुभूति होती है । यह भी सत्य है कि संबंधों से टूटा हुआ पुरुष-स्त्री अधिक से अधिक अजनबी या अकेली होती चली जाती है । आज के मनुष्य को चारों ओर मृत्यु-भय, संत्रास, अकेलापन और अजनबीयत का बोध निगल रहा है ।"[48] वस्तुतः महानगरों में व्यक्ति भीड़ के बीच खोया हुआ है । उसे अपने अस्तित्व के नष्ट होने का भय सता रहा है । आदमी का रिश्ता चूंकि बाज़ार तय कर रहा है, इसलिए आदमी और आदमी के बीच सीधा रिश्ता ही नहीं रह गया है । ज्ञानरंजन की कहानियों ने समय के इस सच की भी पहचान की है । 'शेष होते हुए' कहानी में कई वर्षों के बाद घर लौटने पर मझला अपने घर को घर जैसा नहीं महसूस कर पा रहा है–"मझले को अपना घर एक कृत्रिम सेट सरीखा लग रहा है । जैसे वह किसी नकली ज़गह के सामने व्यर्थ खड़ा हुआ है । इसलिए कि सेट का काम पूरा हो चुका, अब वह केवल नष्ट हो जाने के लिए ही बचा है ।"[49] 'संबंध' कहानी में शहरी परिवेश में अजनबीयत पर ज्ञानरंजन ने और भी तीखे ढंग से चोट की है–"मैं समझता हूँ अगर भाग्य के काम करने का यही ढंग रहा तो मुमकिन है कि मेरा भी आपकी ही तरह इस दुनिया से कोई गंभीर रिश्ता न रह जाए ।"[50] इसी कहानी में कथानायक 'मैं' को अपनी माँ अब कभी-कभी ही अपनी माँ नज़र आती है–"एक लंबे समय तक जो स्त्री मेरे लिए केवल माँ थी, अब कभी-कभी ही माँ लगती है या माँ का भ्रम ।"[51] रचना-दृष्टि की महत्ता के संदर्भ में ज्ञानरंजन की कहानियों में एक तरह की बेबाकी है । ये कहानियाँ अपने कथ्य के प्रति ईमानदार भी हैं । सन् साठ में अपने आपको भीड़

से अलग, 'मिसफिट', असामान्य परंतु लाचार और अपंग मानने वाले चरित्रों पर कहानी लिखना एक फ़ैशन था और ज्ञानरंजन की कई कहानियों में ये तत्त्व उभरकर आए हैं।

2.3.6 व्यर्थताबोध :

व्यर्थताबोध साठोत्तर कहानी की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता है। आधुनिक जीवन की दौड़ में शहरी लोग इस तरह परेशान और स्वार्थी हो गए हैं कि कभी-कभी व्यक्ति को संसार में, समाज में अपना होना भी बेमानी लगता है। कभी-कभी समाज में उसकी हैसियत ही ख़त्म हो जाती है। ज्ञानरंजन ने 'शेष होते हुए' कहानी में बूढ़े माँ-बाप की स्थिति को इसी संदर्भ में रूपायित किया है–"माँ-पिता के कमरे में कुछ नहीं है। उनके लिए किसी को फुरसत नहीं। पिता द्वारा लायी जाने वाली या उनके नाम पर आने वाली चीज़ें भैया-भाभी, टीनू और तारा के बीच बंट जाती हैं। उनके कमरे में सबसे पुराना टूटे हैण्डलों वाला मोटा गद्देदार सोफ़ा, बस जिसकी टेपस्ट्री फाड़कर बहुत-सी स्प्रिंग बाहर झांकने लगी है।"[52] लगभग यही स्थिति सांप्रतिक समाज में अर्थोपार्जन से दूर वृद्धों की हो गई है। ज्ञानरंजन ने साठोत्तर ही इस प्रश्न को हमारे समक्ष खड़ा किया था।

2.3.7 औद्योगीकरण :

औद्योगीकरण साठोत्तरी कहानी का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप यांत्रिकीकरण की प्रक्रिया तेज़ हुई और उसी प्रक्रिया में मानव भी मानव से यंत्र में बदलता गया और उसके संबंध यांत्रिक हो गए। ज्ञानरंजन ने औद्योगीकरण के बाद समाज में फैली असंवेदनशीलता पर संकेत करते हुए शहर में इसका प्रेम पर प्रभाव दिखाया है और यह भी दिखाया है कि

किस प्रकार प्रेम आज शहरों में एक चलताऊ किस्म का मुहावरा बन गया है–"औद्योगिक शहर में दिल ज़्यादा अर्से तक टूटा नहीं रह पाता, बशर्ते कि मेरा साथी नियमित रूप से दारू न पीने लगे और मोर्चाबंदी न कर ले कि देखें कौन मेरा दिल जोड़ता है।"[53] 'संबंध' कहानी में ज्ञानरंजन दिखलाते हैं कि संबंध इतने यांत्रिक हो चले हैं कि बड़े भाई को अपने छोटे भाई के आत्महत्या कर लेने में दिलचस्पी है और उसे अपनी माँ के जीवित होने पर खेद है–"बस सोच के रह जाता हूँ कि जिस तरह आपकी माँ बचपन में ही मर गयी थी, मेरी भी मर गयी होती तो बहुत-सी बेहुदा स्थितियों से मेरा भी बचाव हो जाता।"[54]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत दु:ख, कष्ट, पराजय, नैराश्य, ऊब, आत्महत्या, भीड़ के बीच एकाकी होने की स्थिति, पारिवारिक रिश्तों में विघटन की स्थिति, प्रेम तथा यौन संबंधों का व्यर्थ हो जाना और मोहभंग के काल में युवा वर्ग का स्वयं को 'मिसफिट' समझने की स्थिति इन सब पर ज्ञानरंजन की दृष्टि है। वे इन तत्त्वों के संदर्भ में साठोत्तर दौर के मध्यवर्ग की व्यंग्य के माध्यम से जांच-पड़ताल करते हैं। ज्ञानरंजन की कहानियों की यही धुरी है। उन्होंने पूरी निष्ठा से अपनी इस धुरी पर अपनी कहानियों में आवर्तन-विवर्त्तन किया है। यही वह बिंदु है जहां वह अपने प्राय: समकालीन कहानीकारों के मात्र सेक्स के वर्णन को कहानी कह देने के मुद्दे से अलग हो जाते हैं और भीड़ में भी पहचान लिये जा सकते हैं। ज्ञानरंजन की कहानियाँ भावुकता से असहमति व्यक्त करती हैं परंतु वे संबंधों के संदर्भ में उनके क़तरा-क़तरा मरने के दर्द को बड़ी ही मार्मिकता एवं जादूगरी के साथ प्रकाशित कर देती हैं। यही एक कहानीकार के रूप में उनकी सार्थकता है।

संदर्भ

1. अग्निहोत्री कृष्णा, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का रूप-स्वरूप, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1983, पृ.- 35
2. मिश्र डॉ. रामदरश, हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 1993, पृ.- 1
3. वही, पृ- 106
4. घोष श्याम सुंदर, साहित्य के नए रूप, माध्यम, मई : 1965, पृ.- 129
5.. मिश्र उदयभानु, नई कहानी का स्वर किधर, माध्यम, मई : 1965, पृ.-133
6 बक्षी रमेश, कहानी-अच्छी और नई, परिसंवाद, नई कहानियाँ यानी अन्वेषणधर्मी कहानियाँ, अगस्त-1962, पृ.- 142
7. मदान डॉ. इंद्रनाथ, नई कहानियाँ, अगस्त : 1965, पृ.- 45
8. सिंह डॉ. नामवर, कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण : 1973, पृ.- 164
9. दीक्षित रामप्रकाश, आधुनिक साहित्य, पृ.- 288
10. मिश्र डॉ. रामदरश, हिंदी कहानी : अंतरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 1993, पृ.- 109
11. बटरोही, कहानी की रचना प्रक्रिया और स्वरूप, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष : 1977, पृ.- 98
12. विमल डॉ.गंगा प्रसाद, समकालीन कहानी का रचना विधान, सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, वर्ष : 1967, पृ.- 103
13. सिंह महीप, सचेतन कहानी, हिंदी कहानी पहचान और परख, सं./ मदान डॉ. इंद्रनाथ, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष : 1975, पृ.- 90

14. 'उद्धृत', सिंह महीप, कुमार रजनीश, हिंदी कहानी के आंदोलन : उपलब्धियाँ और सीमाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1986, पृ.- 50
15. कामतानाथ, समांतर कथा यात्रा, सारिका, नवंबर : 1974
16. अमिताभ वेद प्रकाश, हिंदी कहानी : एक अंतर्यात्रा, गिरनार प्रकाशन, गुजरात, वर्ष : 1981, पृ- 78
17. मालती डॉ. के. एम., साठोत्तर हिंदी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1991, पृ- 99
18. अरोड़ा अतुलवीर, सं/मिश्र डॉ. सत्यप्रकाश, परिवेश, शिक्षित-जन की संस्कृति का और भाषाई निर्ममता का आविष्कार करती सामाजिक अनुभवों की कहानियाँ......., कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1970, पृ.- 77
19. वही, पृ.- 77
20. वही, पृ.- 77
21. मोहन डॉ. नरेन्द्र, समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष : 1978, पृ- 49
22. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और इधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ- 62
23. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ- 97-98
24 ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 67

25 मालती डॉ. के. एम, साठोत्तर हिंदी कहानी, लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1991, पृ- 103

26 ज्ञानरंजन, क्षणजीवी, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1968, पृ.– 42-43

27 वही, पृ.-43

28 ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ. – 64

29 ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ.- 91

30. ज्ञानरंजन, दांपत्य, यात्रा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1971, पृ.- 30

31. वही, पृ.- 33

32. ज्ञानरंजन, पिता, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 82

33. वही, पृ.- 79

34. यादव, राजेन्द्र, एक दुनिया समानान्तर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्रकण : 1970, पृ.- 32

35. ज्ञानरंजन, कबाड़ख़ाना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम परिवर्द्धित संस्करण : 2002, पृ.- 66

36. वही, पृ.- 130

37. सं/निर्मोही देश, पल-प्रलिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंटचकूला, पृ.- 116

38. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ.- 92
39. ज्ञानरंजन, दांपत्य, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ.- 92
40. ज्ञानरंजन, रचना प्रक्रिया, यात्रा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1971, पृ.- 45
41. वही, पृ.- 38
42. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ.- 89
43. वही, पृ.- 89
44. प्रकाश, आनंद, सं./मिश्र. डॉ. सत्यप्रकाश, मध्यवर्गीय लेखन में जनवादी दिशा की खोज : ज्ञानरंजन की कहानियाँ, कहानीकार ज्ञानरंजन, नई कहानी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1978, पृ.- 124
45. सं/निर्मोही देश, पल-प्रतिपल, अंक : 45, जुलाई-सितंबर, 1998, आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंचकूला, पृ.-16
46. वही, पृ.- 15
47. वही, पृ.- 15
48. मालती, डॉ. के. एम., साठोत्तर हिंदी कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 1991, पृ.- 134
49. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 62
50. ज्ञानरंजन, संबंध, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ. –114

51. वही, पृ.- 117
52. ज्ञानरंजन, शेष होते हुए, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 65
53. ज्ञानरंजन, हास्यरस, सपना नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (राधाकृष्ण) : 1997, पृ.- 97
54. ज्ञानरंजन, संबंध, फेंस के इधर और उधर, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1968, पृ.- 115

◆◆◆